

नुष्यों को अन्त में, एक आपही प्राप्त होले
हो जैसे नदियां टेढ़ी सीधी बहती हुई समुद्रमें
मिलती हैं ॥ ७ ॥

महोक्षः स्वर्वांगं परशुरजिनं अस्मत्पुत्रि
नः, कपालं चेतो यत्तव वरद तत्रोप कृ-
रणम् ॥ सुरास्तांता मृद्धिं दयावित् प्र-
वद्भूषणहितां नहिस्वस्त्यराजोविष्य
मृगतृष्णाभ्रमयति ॥ ८ ॥

हे भगवन ! महोक्ष याने बूढा वृषभ, ल-
टिया को पावा परशु, गजनय, यस्त्र, सर्प
कपाल इत्यादि तो आसकी सामन्ती है, परंतु
हे वरद ! देवता लोग तां तां दारे उव अ-
पनी २ समृद्धि आपके कृपा दृष्टि से बताने
हुई को धारण करते हैं तो आप क्यों नहीं

श्रीगणेशायनमः

श्रीशिवमहिम्नस्तोत्र

प्रारम्भः

श्लोकः ॥

श्रीगणेशायनमः ॥ पुष्पहन्त उवाच ॥
महिम्नः पारन्ते परमविदुषो यद्यस-
दृशी, स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्ना
स्त्वयिगिरः ॥ अथावाच्यः सर्वः स्वम-
ति परिणामावधिगृणन्, ममाप्येषस्तौ
त्रै हरनिरपवादः परिकरः ॥१॥

पृथक् २ वाणी कहते हैं सो भलेही कहो पर-
न्तु हम नहीं जानते कि ऐसा कौन तत्व है
जोकि आप नहीं हो ॥ २६ ॥

त्रयीतिहो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीन-
पिसुरानकाराद्यैर्वर्णस्त्रिमिरभिदधत्तीर्ण
विकृतिः॥ तुरीयं ते धाम ध्वानभिर व-
रुधानमणुभिः समस्तव्यस्तत्त्वां शरण-
दगृणात्योमितिपदम् ॥ २७ ॥

हे शरण देने वाले ? ॐ यह ब्रह्मपद सम्पूर्ण
व्यस्त याने अ, उ, म, सो आपही की तीनों
वर्णों करके त्रयी याने वेदत्रयी (ऋग, युग,
साम) और तीनों त्रती अर्थात् (उदात्त अ-
नुदात्त स्वरित) अथवा जाग्रदादि अवस्था
इनका, और स्वर्ग, मृत्यु पाताल और तीनों

हे हर ! याने ज्ञातकी पीड़ाको हरने वाले
 महादेवजी आपकी महिमा के पारको छिन्दि
 तभी न जानते ऐसे अज्ञानियों करके गई
 हुई स्तुति यदि आपके असमान (अशुभ्य) होने
 तो ब्रह्मादिकों की भी प्राणी गई हुई स्तुति
 है वे सब निष्फल होजायेंगी विससे ह्याश
 अधिकार न होगा तो उलका (ब्रह्मादिकोंका)
 भी अधिकार न होगातो हम दोनों समानहुए
 तथापि यह सर्वजन अपनी बुद्धिपर परिणाम
 याने परिप्राप्तों ही अवधि अर्थात् सीमा यही
 तक कहना अवश्य है इससे आप करके अ-
 वाच्य अदुग्रह करने योग्यही है, यदि ऐसाहै
 तो मेरा भी इस स्तोत्रके विषे जो आरम्भ है
 वो निरपवाद होवै यह चाहता हूँ ॥१॥

अर्थात्: पन्थानं तव च महिमा वा इव न स

हो; प्रकर्ष से और तीनों गुणों से (सत् रज तम) परे जो अनिर्वचनीय पद तिसमें जो शिवरूप आपको बारम्बार नमस्कारहो ॥३०॥

कृशपरिणतिचेतः क्लेशवश्यं क्वचेदं
क्वचतवगुणसी मोल्लघिनिशिंश्वृद्धिः
इति चकितममंदीकृत्य मां भाक्ते राधा

हरद चरणयोस्तेवाक्यपुष्पोपहारम् ३ १

हे भगवान् ! कृशहै परिमाण जिसको यौन अत्यन्त मन्द और क्लेशके आधीन ऐसा मेरा चित्तकहां ! और गुणोंकी सीमाको उरलघने वाली ऐसी आपकी कलिकहां ऐसे चकितहुए मुझको आपके चरण की शक्ति अमन्दकरके हे वरद ! वाक्य रूप गुण्य से पूजा करती गई ॥ ३१ ॥

यो एतद्व्यावृत्त्याय चकित् सति यत्ने
 श्रुतिरपि ॥ सकस्यस्तौ तव्यः कतिनिव
 युजः कस्यविषयः पदत्ववाचिने पर-
 तिनसन्नः कस्यनवचः ॥२॥

हे रामो आपकी महिमा बाणी और जनसे
 परे है जिससे वेदभी चलित हुये कहलें हैं तो
 अतद्व्यावृत्ति करके याने सो नहीं २ ऐसा अ-
 नुमानसे आपकी महिमा को वेद जानलें हैं तो
 एतादृश महिमावाले आप किसीसे श्रुति लिखे
 जाओ कौन जाने आप से किसने पुकारे और
 आप किस करके प्राणही परन्तु यह आपके
 स्थिति प्रलय करके विषय से, किराया दान
 अथवा बाणी न पड़े याने आपके गुण समस्त
 अपनी बुद्धि के अनुसार कहा चाहलें हैं तो हे
 भी कुछ मार्गना करता है ॥३॥

असुरसुर मुनीन्द्रोकरके पूजित, औरविल्या
 तमहिमा वालेऐसे ईश्वरचन्द्रमौलिक इतस्तौत्र
 को अलघुवृत्तयानेबड़े (शिखरिणी) वृत्तोंकरके
 सकलगुणश्रेष्ठपुष्पदंतनामकगंधर्वकरताभया
 अहरहरनवद्य धूर्जटेः स्तोत्रमालत्पठति
 परम भक्त्या शुद्धचित्तःपुमान्यः ॥ स
 भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथा न भ-
 चुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्ति मांश्च ३१
 शुद्ध चित्तहोइस अनवद्य महादेवजीकेस्तोत्र
 को जो पुरुष प्रतिदिनपरम भक्तिसे पढ़ताहै सो
 ईमलोकमें बहुत्वको प्राप्तहोताहै और पुत्रवावहो
 करकीर्तिमान् होताहै औरभक्तिके रुद्र लोकमें
 शिवके तुल्य अर्थात् शिव स्वरूप होगाहै ॥
 दीक्षा दानतपस्तीर्थज्ञानयोगादिकाः क्रियाः
 महिम्नः स्तवपाठस्यकलां गार्हति पौडशीम् ॥

मधुस्फीताः वाचः परमममृतंनिर्मित-
 वत, स्तवब्रह्मन्किंवाणपिसुरगुरोर्विस्म-
 य पदम् । समत्वेतां वाणीं गुण कथन
 पुण्येन भवतः, पुनासीत्यर्थेऽस्मिन्पुरम-
 थनबुद्धिर्व्यवसिता ॥ ३ ॥

हे भगवन् ! परम अमृतरूप मधु सदृश मि-
 ट्ट याने कोमल देवरूप वाणी रचते भये, आ-
 पको ब्रह्माजी की भी वाणी क्या विस्मयपद है
 यदि ब्रह्मादिकों की वाणी तुच्छ है तो पुनः मैं
 क्या स्तुति करता हूँ । तो ऐसा नहीं, हे त्रि-
 पुरायन ! मैं तो केवल आपके पवित्र करने
 वाले गुणीक कथन से अपनी बुद्धिको पवित्र
 करता हूँ मेरी वृत्ति तो ऐसी निश्चित हुई है ॥

धर्मयत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृता।

त्रयीवस्तुव्यस्तं तिसृषुगुणसिद्धास्त-
 बुषु ॥ अभव्यानामस्मिन्नवरदरमणी
 याम् रमणीं । विहंतुं व्याक्रोशीं त्रिदश
 इहै केजडधियः ॥ ४ ॥

हे वरको देनवाले । जो जगत्की उत्पत्ति
 रक्षा प्रलय करने वाला ऐश्वर्य है जो गुणों से
 भिन्नपानी ब्रह्मा, विष्णु सहस्र इत तीन देवों
 में माना गया है वस्तुतः आप एक ही हो,
 आपका ऐश्वर्य कैसा है जो वेदत्रयी में सरा-
 भूत है हे भगवन ! कई एक जड़ बुद्धिवाले
 (मीमांसक) आपके ऐश्वर्यको न सहन करते
 हुये आपकी निन्दा करते हैं जो अभव्य पा-
 पियों कर के रमणीय आप के इस ऐश्वर्य में
 रमण न कर सकें ऐसा अरमणीय निन्दा करते हैं

कीर्त्तयः किंकायः सखलुकिमुपाय
 सिमुवनं । किम्पारोधातासृजतिकि-
 मुपादानाद्येति च ॥ अतर्वयैश्वर्ये त्वय्य
 नवसरदुःस्थोहतावियः । कुतर्कयंका-
 श्चिन्मुखरयतिमोहायजगतः ॥ २ ॥

निश्चय करके विधाता जगत को सृजता
 है परन्तु किस चेष्टा में सृजता है । तैसेही क्या
 आधार उसको है ? और क्या उपादान है, हे
 भगवन् ! ऐतादृश जो संदेह करतेहैं, सो यह
 कुतर्क कोई मंदमति वालों को ही ठगता है
 याने तिनके ही मतमें समाता है । किस लिये
 कि जगत के मोहके लिये वह कुतर्क कैसाकि
 जोतर्क न किया जावे ऐसे ऐश्वर्य वाले आप

अवसर को नहीं प्राप्त होसके ऐसे अतुल
प्रतापी आप हैं ॥ ५ ॥

अजन्मानो लोकाः किमवयववर्ततापिज
गता माधिष्ठातारं किं अवाधिधिर्ना द्वि-
त्यभवति ॥ अनीशो वा कुर्याद्भवन्नज
ननेकः परिकरोयतीमहास्त्या प्रत्यमर
द्वर संशेरतद्वने ॥ ६ ॥

ये अवयव वाले लोक (शरीर) क्या अ-
जन्माहै जगत की रचना क्या रचना करने
वाले को निरादर करके होती है । और वो
विधाता यदि न समर्थ होगा तो क्या होगा
और जगके रचने में उस के पास कौनसा
साधन है । ऐसे मद मतिवाले आपके विषे

जो संदेह करते हैं सो व्यर्थ है, हे अमरवर ।
(देव श्रेष्ठ) । मुझे तो आपके विषे कुछ संदे-
ह नहीं है ॥ ६ ॥

त्रयीसांख्ययोगः पशुपतिमतं वैष्णव
मिति।प्रभिन्ने प्रस्थाने परिमिदमदःप
थ्यमितिच ॥ रुचीनां वैचित्र्यादृज्जुकु
टिलनानापथजुपां नृणामेकोगभ्यस्त्व
मसिपय सामर्णवइव ॥ ७ ॥

हे भगवान् । वेदत्रयी, सांख्य, योग, शै-
वमत वैष्णवमत, ऐसे भिन्न भिन्न मत होने
से उन मतों के विषे कोई कहते हैं वैष्णव
अच्छा है कोई कहते हैं शैवमत ऐसे रुचिकी
विचित्रतासे सीधे टेढ़े भाग में प्रवृत्त हुए म-

भोगते हो तो कहते हैं कि स्वात्साराम यानि
योगिजनों को विषयरूप वृगतृष्णा नहीं अ-
माती है ॥ ८ ॥

ध्रुव कश्चित्सर्व सकलमपरस्त्वदध्रुवमि-
दं, परौध्रौव्याध्रौव्येजगतिगदतिव्यस्त
विषये । समस्ते प्येतास्मिन् पुर मथन
तैरिस्मितइव, स्तुपन्जिह्वमित्वां नखलु
ननुयुष्ठा सुखरता ॥ ९ ॥

हे भगवन् ! कोई यह सम्पूर्ण जगत को
ध्रुव कहते हैं कोई अध्रुव कहते हैं, कोई जगत
के विषय में ध्रुव अध्रुव यानि नित्य अनि-
त्य कहते हैं ऐसे यह विपरीत विषय वाले इस
जगत में तिन अनेक मतिवादियों करके वि-
स्मृत हुआ मैं आपकी स्तुति करने में लजाता

हैं यह बाबालता ठिठाई नहीं है किन्तु वो
मुझको प्रेरणा करती है ॥ ९ ॥

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरिचो हरि
रधःपरिच्छेत्तुयातावनलमनलरुक्म
वपुषः। ततोभक्तिश्रद्धाभरमुत्कृष्टाङ्ग्यां
गिरिधायत्स्वयंतस्थेताम्भ्रांतवकिमनु
दृतिर्न फलति ॥ १० ॥

हे अणवत् ऊपर को विरिचि, और नीचेको
विष्णु ऐसे ये दोनों आपके ऐश्वर्यको ठहराने
लगे सो असमर्थ हुए, आप कैसे हैं अनल थाने
तेज रूप शरीर पुनः हे देव ! भक्ति श्रद्धा करके
स्तवन करने से तिन दोनों के लिये आप
प्रत्यक्षदर्शन देते भये सो आपकी सेवा क्या
नहीं फलती ! अर्थात् फलती है ॥ १० ॥

अयत्नादापाद्य त्रिभुवन सर्वैरुपतिकरं
 दशास्यो यद्वाहनभृत रणकण्डूपरवशा
 न् ॥ शिरः पद्म श्रेणीरचितवर्णांभो
 रुहबलेःस्थिरायास्त्वह्वकेतस्त्रिपुरहरवि
 स्फूर्जितामिदम् ॥ ११ ॥

हे त्रिपुरहर ! जो रावण वैरियों के सिवाय
 त्रिभुवन के राज्यको प्राप्त होकर बाहुओं को
 धारण करता भया वे कैसे बाहु रणकण्डू के पर
 वश यानि युद्ध को चाहते, सो यह आपकी
 स्थिर भक्ति काही बिलासघात्र है, वो भक्ती
 कैसी कि अपने भस्तककी पत्नी आपके चरण
 में समर्पण करी ॥ ११ ॥

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजव-

नावलात्कैलासपितृदाधि वसती गिरि
 मयतः॥अलभ्या पातालेप्यलसचलि
 तांगुष्ठाशिरसि । प्रतिष्ठात्वय्यासिद्धिं
 मुपचितोमुह्यतिखलः ॥

हे भगवन् ! आपके कैलास में रहते हुए
 भी अपने भुजबलको अंदाज रहा ऐसे रावण
 की पाताल में प्रतिष्ठा न हुई वह भुजबल कैसे
 है कि आपके सेवाही से प्राप्त हुआ है परा-
 क्रम जिनमें और सहजही चलाये हुए पैरके
 अंगुष्ठ से दबगया सारांश यह है कि जब रा-
 वण कैलास पर्वत उठाने लगा तब आप ने
 पैरका अंगुठा हिलाया त्योंही उसकी भुजायें
 दब गई उस समय पातालके लोग हँसने लगे
 इस प्रकार रावणकी श्री बिगडगई दुर्जन जो

ह सो ऐश्वर्यवान् होने से मोह को प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥

यद्बुद्धिं सुखात्म्यां वरद परमोच्छैरपि
सती । मयश्चक्रे वायुः परिजन विष
य त्रिभुवनः ॥ न तस्मिन् हारिभ्यः परि-
वसितारित्वे च्यरमयो न कश्चिद्वाप्यु नत्यै
भवति शिरसस्तद्व्यवनक्तिः ॥

हे प्रभो ! जो वाणाक्षर सुखात्मा जाने इन्द्र
तिसकी बुद्धिगत हुई समृद्धि जाने (ऐश्वर्य)
तिसको दवाता भया जाने तुच्छ किया कृपा
वह कि स्वाधीन है त्रिभुवन जिसके, सो तिस
में आश्चर्य नहीं क्योंकि वह तो आपके चरण
में रहता था तो आपको नमस्कार न छिये
हुए किसी की उन्नति नहीं होती है ॥ ३ ॥

अक्रांठ ब्रह्मांड क्षय चकितदेवाः सुर
 कृपा । विधेयस्याः सोघ त्रिनयन विषं
 सहतत्रतः । स कल्माषः कंठे तव न कुरुते
 न शिष्यमहो विकारोऽपि कलाव्या भुवन
 सयमंगव्यसनिनः ॥

हे त्रिनयन ! समस्तब्रह्माण्डका क्षयहोने के
 डरसे चकित हुए देव, तथा राक्षस तिनपर कृपा
 करने वाले आप कालकूट विषको पीने ए वा-
 रणाकिये हुए तिलका आपके कंठमें जो नील
 रवहै सो क्या नहीं शोभताहै किन्तु वह भी
 शोभता है क्यों कि त्रिभुवन के भंग होने के
 भयसे दुःखित ऐसे आपके कण्ठमें कालापन
 वर्णल करने योग्य है, तिस करके आप नील
 कण्ठ कहाते हैं ॥१४॥

असिद्धार्थानैव क्वचिदपि सदेवा
 सुरनरानिवर्तते नित्यं जगति जायिनो य-
 स्य विशिखाः । सपश्यन्नीशत्वा मित
 रसुरसाधारणमभूत् । स्मरः स्मर्तव्या-
 त्मानिह वशिषुपथ्यः परि भवः ॥

हे ईश ! सम्पूर्ण जगतको जीतने वाले जि-
 से काम देवके विशिख अर्थात् वाण. देव असुर
 मनुष्य आदि सब संसार में कहीं भी अपने
 अर्थ को सिद्ध किये बिना नहीं मुड़े ऐसा वह
 मदन आप को इतर देवताओं के समान देख
 ता हुआ स्मर्तव्य हुआ दग्ध हो गया ॥ १५ ॥

मही पादा वाताद्रजति सहसा संश
 यपदा पदावष्णोऽभ्यर्द्धु जपरिघत्तण
 ग्रहमण्डलसुहृद्यौ दौस्थ्ययात्यनिभृतजटा

ताडिततटा जगद्रक्षायैत्वं नटसि ननु
वामैव विभुता ॥ १६ ॥

हे भगवन् ! आप जगत रक्षा के अर्थ ना-
चते हैं आपकी उलटी विभूती है, क्योंकि पृ-
थ्वी जो है सो आपके पदाघातसे याने पैर च-
लानेसे संशय पदको प्राप्त होती है याने मैं धस
न जाऊं । और आपकी भ्रमण करती हुई अंग
ला सरीखी भुजाओं से डगमगाते तारागणों
वाला आकाश दुखी होता और चंचल ज-
दाओं करके ताडित हुआ स्वर्ग वारम्बार थक
जाता है ॥ १६ ॥

त्रियद्वयापी तारागण शुणतिफेलाङ्ग
मस्तुचिः प्रवाहो वारांयः पृषतलघुदृष्टः
सिरसिते ॥ जगद्द्वीपाकारं जलधिव-

लयंतेन कृतमि त्यनेनेवोन्नेयं धृतम-
हिमदिव्यतववपुः ॥ १७ ॥

हे भगवन् ! जो जलका प्रवाह आकाशसा
व्याप्त और तारागणोंसे गुणितयाने गिना हुआ
फेन उठने की कांति जिसकी सो आपके मस्त
कपर विंदुसमान छोटासा दीख पड़ा और उस
करके यह जगत दीपाकार समुद्रसे विराहुआ
किया गया इसकरके दीप्त महिमा धारी आप
का शरीर उत्तम जान लेना चाहिये ॥ १७ ॥

रथःक्षोणी यता शतधृतिरगेन्द्रो ध-
नुरथो रथांगे चन्द्राकौ रथचरणपाणिः
शरदति ॥ दिधक्षोस्ते कोयं त्रिपुरत्-
णमाडंबर विधि विधेयैः क्रीडंत्योनख-
लुपरतंशःप्रमुधियः ॥ १८ ॥

हे महादेव! तूणके समान त्रिपुरासुरको भस्म
 करनेकी इच्छा करते हुए आपका क्या ! यह आ-
 डंबरयाने बसेडा करना देखो पृथ्वी तो रथ
 ब्रह्मासारथी अगेंद्र याने पर्वतोंका राजा वनुष
 सूर्य चन्द्र रथके चक्र और चक्रपाणि (चक्रहै
 हाथमें जिसके ऐसा) विष्णु सोही बाण बना-
 या यह तो ठीकहै क्योंकि भक्तोंके साथ झींझ
 करती हुई प्रभुओंकी बुद्धियां निश्चयकरके पर-
 तन्त्र याने पराधीन नहीं होती हैं ॥ १८ ॥

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिभादाय
 पद्मयोयदेकोनेतरिमग्निजमुदहरज्ञेन
 कमलम् ॥ गतो भवत्युद्रेकः परिण-
 तिमसौ चक्रवपुषा, त्रयाणां रक्षयि त्रिदु-
 रहरजागतिजगत्ताम् ॥ १९ ॥

हे त्रिपुर ! हरि याने विष्णु आपके चरण
 में सहस्र कमलों को बलि याने भेट रखकर
 पूजन करतेथे सो तिनमें जब एक जन याने
 एक कम हुआ तब अपने नेत्रकमलको निकालते
 भये तब भक्तिका उद्रेक याने वुद्धीके परि
 माणको प्राप्तहोताहुआ (यह भक्तकी सीमा
 हुई) सो सुदर्शनचक्र होकर स्वर्ग मृत्यु, पाताल
 ऐसे त्रिभुवनको रक्षाके अर्थ जागृत सो केवल
 यह आपका अनुग्रह है ॥ १९ ॥

ऋतौ सुप्तोजाग्रत्त्वमसि फलयोगेऋ-
 तुमतां क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरु-
 धाराधनभृते। अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य ऋतुषु
 फलदानप्रतिभुवं श्रुतौ श्रद्धां बध्वा दृढप-
 रिकरः कर्म सुजन ॥ २० ॥

हे भगवान् । क्रतु अर्थात् यज्ञ सो किसी
 उपद्रव से नष्टभये संते क्रतुमता याने यज्ञ करने
 वालोंके फल आपही जागृत रहते हो नहीतो प्र-
 च्वस्त (नष्ट) हुआ कर्म पुरुषके आराधन बि-
 ना फलीभूत होगा, इससे आपको यज्ञ फल देने
 के प्रतिभू अर्थात् मध्यस्थ समझकर यह जन
 समूह कर्म करनेमें दृढ़ परिकर यानि मजबूत
 कर्म बांधरहा है, क्योंकि मुख्य फलदाता आ-
 पही हो ॥ २० ॥

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरर्थाशस्त-
 नुभूतामृषीणामात्विज्यंशरणहृषदस्याः
 सुरगणाः क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफलवि-
 धानव्यसनिनो ध्रुवंकर्तुः श्रद्धाविषुस्म-
 मिचारायहिमखाः ॥ २१ ॥

हे शरणदा! जो दक्ष क्रिया कुशल और शरीरियोंमें दक्षपति था. कि जिस दक्ष प्रजापतिके यज्ञ में ऋषियोंको आर्तिज्यथा, सुरगुण सदस्य (सभ्य) थे ऐसे दक्षके यज्ञके फलको देना यही है व्यसन (चिन्ता) जिनको ऐसे आपसे यज्ञका नाश हुआ इससे यह प्रगट हुआ कि श्रद्धा बिना करने वाले के यज्ञ विपरीत फल देने वाला होता है ॥ २१ ॥

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिके स्वां-
 दुहितरंगतं रोहिद्रूतांरिमयिषुमृष्य
 स्यवपुषा ॥ धनुष्पाणेर्यातं दिवसमपिस
 पत्रा कृतममुं त्रसंतते द्यापित्यजति न
 मृगव्याधरभसः ॥ २२ ॥

हे नाथ ! आपका आखेट खेलना कैसा है

कि डरहुए प्रजानाथ याने ब्रह्माजी को स्वर्ग
 गयेहुए का अद्यापिभी नहीं छोड़ता, वे कैसे
 ब्रह्माजीहैं किवलात्कारसे रममाण होनेकी इच्छा
 करते हुए तिससे डरीहुई हरिणी भई अपनी क
 न्यासे हरिण होकर भी पुनः विषय करना चाहते
 भये और आप धनुषहाय में लिये हुए आपस
 डरता और कमाके स्वधीन हो रहा है ॥ ३३ ॥

स्वलावण्याशसाधुनधनुष मन्हाय
 तृणवत् पुरप्लष्टं दक्षा पुरमथन पुष्पा
 युधमपि ॥ यदि क्षेणं देवी यमनिस्त
 देहाद्ध घटना देवैति त्वामद्धा बतवर्द्ध
 दुग्धा युवतयः ॥ ३३ ॥

हे पुरमथन ! आपने पुष्पायुध याने मदन
 को तृणके समान शीघ्रजलाकरछार किया यह

प्रत्यक्ष देखते भी पुलः देवीपार्वती, आपको स्नेह
 याने अपने वश जानती है यह अत्यन्त खेद
 की बात है वह देवी कैसी है कि अपनी सुन्दरता
 को प्रशंसा करती है वह मदन कैसा है कि धनुष
 को धारण करनेवाला किस हेतुसे ! तो निरन्तर
 देहार्थ घटना याने आवेशरीर में अपने को
 राखने से ही बरदे ? युवतिजन (स्त्रियां) प्रायः
 मूर्खही रहती हैं ॥ २३ ॥

स्मशानेष्वंकीडास्मरहरपिशाचाः
 सहचराश्चित्तभस्मालेपःस्रगपितृक-
 रोटीपरिकरः॥अमगल्यंशीलंतवभवतु
 नामैवमखिलंतथापिस्मर्तृणांवरदपरमं
 मंगलमसि ॥ २४ ॥

हे स्मरहर ! आपका स्मशानमें रहना, मृत

प्रेत पिशाच ये आपके साथ रहनेवाले, और शरीरमें चित्ताके भस्मका लेपन नरगुंडों की माला इसप्रकार आपका स्वभाव अशुभ है, तथापि स्मरण करने वालोंके हे वरद ! आप परम मंगल रूप हैं ॥ २४ ॥

मनःप्रत्यक्षचित्ते सदिक्षुसदिधायान्-
 तमरुतःप्रहृष्यद्भोगाणामुदसलिलो-
 त्संगितदृशः ॥ यदा लोकयात्रादं हृद-
 इवनिमज्ज्यामृतमथेदधृत्यं तस्तस्वकि-
 मपियमिनरतकिलभक्षान् ॥ २५ ॥

हे भगवन् ! प्राणायामादि करने वाले विष-
 यों से निवृत्त ऐसे जो यमि अर्थात् योगिजन
 अपने अंतःकरण में अपने मनको धारनेवाले
 यान्निश्चिन्तन करनेवाले जो कुछतत्त्वको देखकर जि

नके रोमंच खड़े हो रहे हैं और आनन्द करके
नेत्रों में जल भर आया है मानों वे अमृत के हृदय
में गोता में लगाय जो आन्दको प्राप्त होते हैं
सो निश्चय करके वह तत्व आप ही हो ॥२५॥

त्वमकस्त्वंसोमस्त्वमासिपवनस्त्वंहुत
वहःत्वमापस्त्वन्व्योमत्वमुधरणिरात्मा
त्वमिन्द्रिचःपरिच्छिन्नामेवंत्वयिपरिणता
विभ्रतिभिर्नविद्मस्तत्त्वंवयमिहतुय
त्वंजमदसि ॥ २६ ॥

हे भगवन् ! आप सूर्य हो, आप चन्द्रमा हो,
आप वायु हो, आप अग्नि हो, आप जल हो,
आप स्वर्ग हो, आप पृथ्वी हो और आत्मा भी
आप ही है देवाधिदेव ? इस प्रकार आप में
जो ज्ञानी और भक्तजन परिच्छिन्न अर्थात्

देवताओं को धारण करता हुआ जो ओंकार
 कैसा कि तीर्णविकृति अर्थात् निर्विकार और
 सूक्ष्म ध्वनियों से आपका जो तुरीय धाम
 जाने जाग्रदादि अवस्थाओं से परे जो चतुर्थ
 धाम तिसे बता रहा है ॥ २७ ॥

भवः शर्वोरुद्रः पशुपतिरथोग्रः सह-
 ज्जहां स्तथाभीमेशानावितियद मिधा
 न्नाष्टकमिदं अष्टुष्मिन्प्रत्येकं प्रविचरति
 देवश्रुतिरपि प्रियायस्मै धाम्ने शणिहि-
 तनभर्यास्मिभवते ॥ २८ ॥

हे देव ! भव शर्व, रुद्र पशुपति, उग्र महा-
 देव भीम, ईशान, यह जो आपके नामका
 अष्टक है इस प्रत्येक नाममें श्रुतियां त्रिहार क-
 रती हैं इसलिये ऐसा जो प्रियधाम आपतिन
 के अर्थ में नमस्कार करता हूँ ॥ २८ ॥

नमो नेदिष्ठाय प्रियदबद्ध विष्टाय च
 नमो नमः क्षोभिष्ठाय स्मरहरमहिष्ठाय
 च नमः नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयनत्रिष्ठा
 यचनमो नमः सर्वस्मै तदिदमति स-
 वायचनमः ॥ २९

हे शिव ! नेदिष्ठ अर्थात् अत्यन्त समीप ऐसे
 आपके अर्थ नमस्कार है, और ददिष्ठ अर्थात्
 अत्यन्त दूर रहने वाले ऐसे आप के अर्थ
 नमस्कार है क्षोदिष्ठ अर्थात् परमसूक्ष्म आ-
 पके अर्थ नमस्कार है हे स्मरहर ! याने काम
 देवको जलाने वाले जो आप महिष्ठ याने अ-
 त्यन्त बृद्ध आपके अर्थ नमस्कार है. हे त्रिन-
 यन ! यदिष्ठ अर्थात् अत्यन्त युवा (जवान)
 अवस्था वाले आपके अर्थ नमस्कार है और

समस्तको उल्लंघके जाने वाले आपके अर्थ
नमस्कार है ॥

बृहलरजसेनिश्चोत्पत्तौ भवाय नमो
नमः प्रबलतमस्यै तत्संहारे हराय नमो
नमः ॥ जनसुखकृते सत्वोत्क्रिक्तौ मृडाय
नमो नमः ॥ ग्रामहसिप्रदेनिस्त्रैगुण्येशिवा
यन्नमो नमः ३० ॥

हे शिवजी ! जगत के उत्पत्तिके अर्थ परम
रजो गुणरूपधारण किये ऐसे जो आप भव
तिनको बारम्बार नमस्कार हो और उसके (ज
गत के) संहार करनेमें गुणको धारण करनेवाले
हर तिनके अर्थ पुनः २ नमस्कार हो जगत्
के सुख के अर्थ सत्वगुणके उत्पन्न करने वा
ले जो आप मृड तिनको बारम्बार नमस्कार

असितगिरिसमस्यात्कञ्जलसिंधु-
 पात्रे सुरतरुवरशाखालेखनीपत्रमुर्वी ।
 लिखति यदिग्रहित्वा शारदा सर्वकालं
 तदापि तवगुणाना मीशपारंन याति ३१
 हे ईश !-असित याने काले पर्वतके समान
 काजल स्याही समुद्र रूप पात्रमें होवे सुर-
 तरु कल्पवृक्ष के साखाकी उत्तम लेखनी हो
 और पत्र पृथ्वी हो इत्यादि साधनों को लेकर
 यदि शारदा सबकाल लिखतीरहे तथापि आ-
 पके गुणों का पार नहीं धाता मैं तो कौन प-
 दार्थ हूँ ॥ ३२ ॥

असुरसुरमुनीन्द्रैरचितस्येदुमाले श्र-
 थितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ॥
 सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ता भिधानो ॥
 रुचिरमलयुवतैः स्तोत्रमेतच्चकार ३३

हे शिव ! दीक्षादान, तप, तीर्थ, धन योगादि
 क्रिया व सब आपके उस महिम्न स्तोत्र पाठ
 की सोलरी कलाका भी प्राप्त नहीं होते हैं ॥
 आशमास महिम्नस्तोत्रे पुण्यगंधर्वभाषितम् ॥ अ-
 नुपममनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम् ॥ ३६ ॥

अनुपम और मनको हरने वाला और ईश्वर वर्ण-
 तपक और पवित्र पुण्यशत गंधर्व वर कहा हुआ वह
 स्तोत्र समाप्त हुआ ॥ ३६ ॥

महेशानांपरादेवो महिम्नो नापरास्तुतिः । अ-
 वारान्नापरो भद्रो नास्तितत्वगुरोः परम ॥ ३७ ॥

महादेव जी मे परे कोई देव नहीं महिम्न से परे
 दूसरा कोई स्तोत्र नहीं अथवा स परे कोई मन्त्र नहीं
 और गुरु से कोई निस्व नहीं है ॥ ३७ ॥

कुशुमदशुननामासर्वगंधर्वराजः शिशुशशु-
 धरमालेद्वेदेवस्यदासः ॥ सखुलनिजमहिम्ना-
 भ्रष्ट एवाम्य रौपा त्स्त्वनमिदमकाशीहिव्यदि-
 व्यमहिम्नः ॥ ३८ ॥

ये पुष्पदन्ताचार्य जो पण्डिते गंधर्व ध्यान में कुरुपदसन नाम
गंधर्वों में किसी समय एकान्तमें शिवजी और पार्वती जी का
आनन्द की बातें छिपकर सुनने लगे तो शिवजी ने देखतेही
इन्हेंको यह शाप दिया कि जाओ तुम इस गंधर्व पदवासे पतित
होकर मनुष्य लोक में जन्म लो तब इन्होंने यहाँ जन्म लेकर
परम दिव्य इस महिम्न स्तोत्रसं शिवजी का अत्यन्त प्रसन्न
कर मनोवांछित फल प्राप्त किया ॥ ३८ ॥

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षकहेतुं । पठति यदि
मनुष्यः प्राजलिर्नान्यत्रेताः ॥ त्रजतिशिवसमीपं
किन्नरैः स्तूयमानः । स्तवनमिदममोघं पुष्प
दन्त प्रणीतम् ॥ ३९ ॥

पुष्पदन्ताचार्यका कथित जो निर्दोष महिम्न स्तोत्र वह
कैसा है कि देवता और मुनियों करके पूजित और स्वर्गमोक्ष
प्राप्ति का मुख्य कारण है ऐसे स्तोत्रको जो मनुष्य शिवर चित्त
होके हृद्य जाइकर पढ़ता है वह शिवजी के समीप प्राप्त होता
है उसकी स्तुति किन्नर गंधर्व आदि करते हैं ॥ ३९ ॥

श्रीपुष्पदन्तमुखपंकजनिर्गतम् । स्तोत्रेणकि-
न्निपहरेणहरप्रियम् ॥ कंठस्थितेनपठितेनसमा

हितेन । सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥४०॥

श्रीपुष्पदन्ताचार्य के द्वारा विन्द से कहा हुआ जो यह पाप नाशक महिम्न स्तोत्र है चित्त लगाकर इसके कण्ठ पाठ करने से भूतपति जी श्री महादेवजी अत्यन्त प्रसन्न होते हैं क्योंकि शिवजी को यह स्तोत्र अत्यन्त प्रिय है ॥ ४० ॥

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमुत्पठेत् ।

भवपाशं विनिर्मुक्तां शिवलोकं सगच्छति ॥४१॥

जो मनुष्य इस महिम्नस्तोत्र को एक बार वा दो बार वा तीन बार नित्य पढ़ेगा वह संसार की फाँसीसे छूटकर शिव लोक में प्राप्त होगा ॥ ४१ ॥

इत्येषावाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः ।

अर्पिता तेन मे देवः प्रीयतां च सदा शिवः ॥ ४२ ॥

यह स्तोत्र स्त्री पूजा श्रीमहादेवजी के धरण कमल पर मैं [पुष्पदन्ताचार्य] ने चढ़ा है । उससे श्रीसात्व सदाशिव मुझपर सन्तुष्ट हों ।

शिवमहिम्नस्तोत्रम्

श्रीमद्गुरुदेवस्य शिवाय नमः ॥

शुटी प्रचार ।

३०० प्रकार की जड़ी बूटियों के चित्रों सहित ।
 यह वैद्यकका छोटा सा ग्रंथ अपने ढंगका निरालाहै इस
 पुस्तकको महात्मा महन्त सुखरामदास जी ने अपने जीवन
 भर अनुभव किये हुए चटकलोंसे भरा है इसमें प्रत्येक छोटि
 से छोटि और बड़े से बड़े रोगोंके बहुत ही सुगम उपाय
 लिखे हैं इस पुस्तकके पास रहने से मनुष्य अपने घरपर
 तथा विदेशमेंभी अपना और अपने साथियों का रोग दूर
 करसकता है चार २ वैद्य दक्कीमों के पास दौड़न की
 आवश्यकता नहीं रहती इस लिये इसको एकमति अवश्य
 पास रखना चाहिये इसमें धातुओं के कारण मारण की
 विधि जंगलकी जड़ी बूटियों द्वारा बहुतही सहजलिखी
 हैं । तथा औषधि प्रस्तुति करने की प्रणाली भी विधि
 पूर्वक लिखी है जिन २ जड़ी बूटियोंका काम इस पुस्तक
 में पढ़ा है उन सबके ऐसे सुरर चित्र दिये हैं मानों अबस
 ही खींच दिया है यह चित्र प्रायः ३०० से अधिकहैं पुस्तक
 के अंत में नागेश्वरयन्त्र बाहुका यन्त्र, नृगांग यन्त्र आ
 के कितनेही अद्भुत और उपयोगीचित्रहैं इस तरह ।
 मिलकर यह पुस्तक ३०० पृष्ठमें संपूर्ण हुई है मूल्य जि
 सहित का १।रु० बा० म०=)

मिलनेका रहा—

लालाश्यामलाल अग्रवाल श्यामकाशी प्रेसमथुरा

